कहीं और न जाया जाए

रजनी मोरवाल

कहीं और न जाया जाए

जानती है इस बार सहिजन फिर से जी भर के लकदक हुआ है, सफेद और हल्के पीले फूलों से लदा इतना घेर-घुमेर हो रहा है कि पूछ मत, उस पर ढेर सारी नई शाखाएँ फूटी

https://www.hindiadda.com/kahi-aur-na-jaya-jae/

है। और अपनी पुरानी शाखाएँ फैलाकर छत तक ले आया है। इस बार तो उसने पानी की टंकी को भी अपने भीतर छुपा लिया है। सच्च्च... हरियल पत्तों पर तो जैसे बहार उमड़ी पड़ी है, मजाल है जो पत्तों के बीच से छनकर धूप की कोई किरचन भी फिसल कर धरती पर आ गिरे। इन दिनों उस काली छोटी मर्मेर चिड़िया के खूब मजे हो रहे हैं। दिन भर इस डाल से उस डाल पर फुदकती रहती है बस्स्स...। इत्ता-सा पेट है मरी का, फिर भी पूरे दिन रस पीते-पीते अघाती ही नहीं।

बीते बरस वाली मर्मेर याद है तुझे?

जब तू बच्चों के साथ छुट्टियों में यहाँ आई थी?

वह न जाने क्यों कुछ बीमार-सी लगती है अबके।

सुबह-सवेरे बस एक ही डाल पकड़ कर बैठ जाती है और उसी के फूलों से रस पीती रहती है।

वह बूढ़ी भी तो हो गई है न अब...

शायद भूख भी कम लगती होगी...

अपना गम लेके कहीं और न जाया जाए

घर में बिखरी हुई चीजों को सजाया जाए।

- निदा फाजली

माँ की इन्हीं बातों पर मैं अक्सर झुँझला उठती हूँ, अब उन्हें कैसे पता कि वह मर्मेर बूढ़ी है या जवान? आखिर माँ कैसे कह सकती है कि यह वही मर्मेर है जो पहले भी इस पेड़ पर आ चुकी है... माँ भी न जाने कैसे ये सारे अनुमान लगाती रहती है।

इन सारी बातों के दौरान एक बात जो मैंने महसूस की वह यह थी कि बात करते-करते माँ की वार्तालाप के शुरुआत में उमड़ने वाला उत्साह धीरे-धीरे अंत तक बुझता ही गया था और फिर अंततः विलीन ही हो गया था। अब उनकी आवाज में से प्रारंभ वाली लय गायब हो चुकी थी और उसके स्थान पर इस वक्त रिसीवर में से एक धीमी फुसफुसाहट निकल रही थी, वह जैसे अपने ही खयालों से घिरी अपने-आप से बातें किए जा रही थी -

अब सारे दिन तो एकसार नहीं होते न बिट्टो

जब यही मर्मर जवान थी तो बच्चों के साथ अपने सहिजन पर आती थी

मौसम भर एक डाल से दूजी डाल पर फुदकती रहती थी

अपने चूजों को फूलों में से रस पीना सिखाती थी।

बच्चे भी अपनी गुलाबी नर्म चोंच को तिरछा कर-करके फूलों के भीतर डालने के प्रयास में लगे रहते थे।

मर्मर पूरे-पूरे दिन इस काम में तन्मयता से लगी रहती थी कि जैसे फूलों के बहाने जीवन के भीतरी राज खोज लाने की विधि बच्चों को पढ़ा रही हो।

वही काली चिकनी मर्मर अब कितनी उदास बैठी रहती है... नितांत अकेली और बेकाम।

मैं समझ गई कि माँ को अपने अकेलेपन का अहसास सता रहा है। एक ही तो बेटा है वह भी विदेश में नौकरी कर रहा है जिसे माँ की सुध लेने की भी फुर्सत नहीं। बची हम चार बहनें। तीन मुझसे बड़ी तो अब अपने ही बड़े होते बच्चों के साथ नाती-पोतों में व्यस्त हैं। पुराने जमाने में हर घर में चार-पाँच बच्चे होते थे, बुढ़ापे तक एक न एक बच्चा माँ-बाप के साथ बना ही रहता था। माँ के दुख भरे दिनों में एक मैं ही थी जो उनके पास बची रही थी सो उनके दिल के तार मुझसे सदा के लिए जुड़ कर रह गए थे।

बरसों से एक ड्यूटी मैंने अपने ऊपर स्वतः ही ओढ़ ली थी कि। घर-गृहस्थी के काम-काज निबटा कर दिन में कम से कम एक दफा समय निकालकर माँ को फोन अवश्य करती हूँ। यह सिलसिला कई बरसों से अनवरत चल रहा है। अत्यधिक व्यस्तता होने पर भी हाल-चाल पूछने का समय तो कम से कम मैं निकाल ही लेती हूँ। किसी दिन अगर माँ की आवाज में उदासी झलकती नजर आए तो मैं उनके प्रिय विषय सहिजन के बारे में उनसे बातें करने लगती हूँ। ले-देकर एक वही तो है जो अब माँ का एकमात्र सहारा बचा है उस घर में।

माँ जब भी सहिजन के बारे में बताती हैं तो यूँ लगता है कि जैसे वह उनका कोई पारिवारिक सदस्य हो। आमतौर पर माँ को उदासीनता से प्रसन्नता तक बहा ले आने के क्रम में ऐसा होता था कि मैं सहिजन का विषय छेड़ूँ। किंतु आज माँ ने मेरी यह गणना गलत सिद्ध करते हुए स्वयं ही उसका टॉपिक छेड़ दिया था और धारा के

विपरीत मर्मर की बातें बताते हुए अपने एकाकीपन में गोते लगाने लगी थी। यह एक ऐसा परिवर्तन था जो मैंने पहली बार उनमें महसूस किया था। वह बात करते-करते निहायत ही टूटी हुई और कमजोर नजर आ रही थी... इतनी कमजोर तो वह पहले तो कभी नहीं थी?

मैं यह सोचकर डर गई कि माँ अब थकने लगी है, माँ को अपने भीतर "सल्क" होता देखकर फिलहाल के लिए ही सही किंतु एक नया प्रश्न मैंने उन तक उछाल ही दिया...

"माँ फलियाँ कितनी उग जाएँगी इस बार?"

माँ जैसे फिर से अपने आपे में लौटती हुई सी बोली -

"अरे मत पूछ"

"फूलों को देखकर तो लगता है कि मौसम भर सारा का सारा पेड़ लदा रहेगा"

"तू देखना सारा मोहल्ला मेरी जान खाएगा"

"एक मिनट भी न सो पाऊँगी दोपहरी में"

"सब्जी वाले और ठेले वाले परेशान करेंगे सो अलग"

"एक फली भी किसी को नहीं देने वाली मैं"

"चाहे डाल पर ही उगी-उगी सूख जाएँ फलियाँ"

"बेचूँगी तो हरगिज नहीं, तू देखना"

"मैंने आज तक एक फली नहीं बेची"

माँ ने अपनी बात को कुछ यूँ किफायत से होंठों में भींचकर कही जैसे किसी खजाने को सहेज रही हों।

मैंने कहा "ठीक है माँ जो मन करे सो ही किया करो"

"अब इस उम्र में पेड़-वेड़ की गंदगी भी तो साफ नहीं होती होगी तुमसे"

"उस पर भी पतझड़ में कितना बिखरता है वह पेड़ और ऊपर से पक्षियों का जमघट लगता है सो अलग से"

"अरे नहीं-नहीं बिट्टो" वह बोली ऐसा नहीं कहते, वह भला क्या सिर्फ पेड़ है?

"तेरे ब्याह में भरी दोपहरी हलवाई उसी के नीचे कढ़ाव चढ़ाया करता था। रात में छत पर घर भर के बच्चे और बहुएँ बेफिक्र होकर इसकी ठंडक में सोया करते थे, तू क्या वाकिफ नहीं? अरे बिट्टो... तू उस वकत देखती इसे, जब यह जवान था... इत्ता तो चौड़ा तना था इसका, तेरे पापा जब-तब इसे हाथों में भरने की कोशिश करते रहते थे पर हमेशा बित्ते भर तो छूट ही जाया करता था।" मैंने इतनी दूर से भी अनुमान लगा लिया था कि माँ ने "इत्ता... चौड़ा" कहते समय अपने हाथों को जरूर फैलाया होगा और एक दर्प-सा जरूर उनके मुख पर गहरा गया होगा।

मैंने माँ को टालने की गरज से कहा... अच्छा माँ अब फोन रखती हूँ बच्चों के स्कूल से लौटने का समय हो रहा है और मुझे नास्ता भी तैयार करना है। हालाँकि फोन रखने के बाद भी मैं काफी देर तक सोफे पर बैठी विगत के बारे में सोचती रही थी।

बड़ी तीन बहनों की शादियाँ तो पापा के रहते ही निबट गई थी। मुझसे छोटा भाई और मैं उस वक्त पढ़ ही रहे थे। पापा के गुजरने के साल भर के भीतर ही माँ ने मेरी शादी निबटाई थी हालाँकि उस शादी में सब कुछ सामान्य था परंतु पहले हुई अन्य शादियों के मुकाबले अब पापा हमारे बीच में नहीं थे, सो रूपए-पैसों के मामले में माँ के हाथ इस बार जरा तंग थे। उन्हें हर बात में सोच-समझकर खर्चा करना पड़ रहा था। माँ अबकी बार बारात किसी होटल या मेरिज गार्डन के बजाय अपने घर पर ही बुलाने का निश्चय कर रही थी। हालाँकि बाकि बहनों की तरह मुझे भी बड़ा चाव था कि मेरी शादी में भी खूब धूमधाम हो किंतु माँ ने समझाया था "बिट्टो... तू मेरी सबसे छोटी बेटी है अगर तेरी भी शादी बाहर होगी तो मेरी ढ्योड़ी तो कुँवारी ही रह जाएगी" और बस मैंने अपनी जिद छोड़ दी थी। माँ जो कहना चाह रही थी वो मैं समझ गई थी। मैं अपने-आप को माँ के दुख के दिनों का भागी यूँ ही तो नहीं कहती।

उसके पश्चात हमारे घर के बड़े से आँगन में पंडाल बाँध दिया गया था, भरी धूप में सहिजन के नीचे हलवाई का प्रबंध कर दिया गया था। रात में उसकी ठंडक के नीचे बच्चों और औरतों के सोने का प्रबंध भी। माँ पुनः कृतज्ञ हुए बिना नहीं रह पाई थी इस अबोले प्राणी के प्रति। बचपन में इसके तने और टहनियों को छोड़कर इसका ऐसा कोई भाग नहीं था जो माँ हमे पकाकर न खिलाती हो। फूलों की नारियल वाली चटनी, पत्तों का बेसन वाला साग और माँ की सबसे पसंदीदा तो थी इसकी फलियाँ। इन फलियों को वह कभी कढ़ी के साथ, कभी दाल के साथ तो कभी साँभर के साथ बनाया करती थी। कहती थी इसके पोषण से शरीर का सारा दर्द जाता रहता है। खैर शरीर का दर्द तो

जब आता तब जाता किंतु पापा की छोटी-सी तनख्वाह वाले माँ के इस बड़े से परिवार के लिए रोज एक नई डिश जरूर मुहैया हो जाया करती थी, वो भी बिना अतिरिक्त खर्चा किए। हालांकि उस वक्त हम सभी रोज-रोज बनने वाले सहिजन के व्यंजनों से आजिज आ चुके थे।

बचपन में 'आई-स्पाई' खेलते हुए सहिजन की शाखाओं पर जब हम लपक कर चढ़ जाते थे तो फौरन ही धाड़ से उसकी हरी टहनियाँ थामे जमीन पर गिर पड़ते थे। सब कहते थे कि इस पेड़ पर मत चढ़ा करो इसकी टहनियाँ कच्ची होती है पर माँ का कहना था कि -

"मस्ती करते हो न?"

"देखो कैसे हौले से पटक कर सबक सिखाया इसने"

मैं सोफे पर बैठे-बैठे मुस्कुराने लगी... माँ भी न... तभी घंटी की आवाज सुनकर मैं दरवाजे तक दौड़ी, बच्चे स्कूल से लौटते ही जरा भी सब्र नहीं रखते, घंटी पर घंटी बजाते रहते हैं। बच्चों ने खाना खाया और होमवर्क करके कुछ देर सो गए। मैं फिर अपने विचारों की टूटी हुई कतरन से जा मिली...। वीरेन पूरा महीना दौड़-भाग करते हैं तब कहीं जाकर हम लोगों के लिए एक सुकून और आरामदायक जिंदगी जुटा पाते हैं। यहाँ घर और बच्चों की जिम्मेदारी मेरे कंधों पर रहती है। कभी-कभी तो ऐसे जीवन से ऊब-सी होने लगती है जिसमें हर कोई अलग-अलग पटरी पर दौड़े जा रहा है। वीरेन से शिकायत करना भी फिजूल ही है वह तो खुद बेचारे अपने लिए भी समय नहीं निकाल पाते। मेरी बोरियत के किस्से सुनकर अक्सर कहते हैं... यार ...कुछ क्रिएटिव काम करो, बागवानी करो, घर सजाओ, जिम ही ज्वाइन कर लो या कोई हॉबी क्लासेज ही ढूँढ़ लो।

अरे यार... चिढ़ होती है मुझे यह सुनकर कि काम करो... क्या काम करूँ? सब कुछ तो रेडीमेड उपलब्ध है आजकल। "फ्लैट-कल्चर" में बागवानी भी करूँ तो कितनी करूँ? ये दो बच्चे हैं वो भी स्कूल, कोचिंग और गेम्स के प्री-बुक्ड हुए टाईम-टेबल से लेस...। मेरे पास माँ की तरह पाँच बच्चे भी तो नहीं हैं... फिर माँ के पास सहिजन भी तो था... अपने-आप से इतनी नाराजगी के बावजूद भी मैं इस विचार पर मुस्कुरा दी।

न जाने माँ ने मेरी तरह कभी बोरियत की शिकायत क्यों नहीं की? पापा अपने जमाने के पतियों वाली सभी खूबियों को जीते थे। घर से बाहर की दुनिया उनकी अपनी थी

और घर के भीतर की दुनिया में माँ कैसे पाँच बच्चों के साथ सुख-दुख बाँटती थी यह जानना उनके व्यक्तित्व का हिस्सा कभी नहीं रहा था।

माँ के जवानी के दिनों में न किटी पार्टीज होती थी, न टी.वी. सिरियल्स और न ही सखी-सहेलियों का जमावड़ा फिर भी किसी ने माँ के मुँह से कभी ऊब, एकाकीपन या घुटन जैसे शब्द नहीं सुने थे। हालाँकि पापा जब कई-कई दिनों के लिए टूर पर जाते थे तब कितनी ही मर्तबा मैंने माँ को चाँदनी रात में उसी सहिजन के झरते फूलों के नीचे टहलते देखा था। हम भाई-बहनों में से कोई एक भी यदि बीमार पड़ जाता था तो अकेले में माँ को उसी सहिजन के तने से पीठ सटाए अकेले में सुबकते भी देखा था।

पता नहीं माँ का प्रकृति से रिश्ता किसी स्नेह का परिणाम था या मजबूरी का? वह कभी अपनी भावनाएँ यथार्थ में प्रकट नहीं कर पाई या वे जीवन के सिर्फ प्रस्तुतीकरण वाले भाग को ही समझ पाई थी। जीने के लिए हमेशा साजोसामान या किसी हुजूम की जरूरत नहीं पड़ती। पता नहीं यह सूत्र माँ के हाथ कैसे लग गया था? शायद यह शेर उन्होंने कहीं सुना होगा, मगर पूरी तरह से समझा कैसे? वह तो अनपढ़ थी।